

सुलह

रीता सिंह

घड़ी पर नजरें दौड़ाई तो मैं चौक गई। शाम के 5:00 बज रहे थे। मुझे ध्यान आया आज सुरुचि और प्रशांत के साथ मेरा बाहर जाने का प्रोग्राम था। कितनी मुश्किल से यह प्रोग्राम बना था। मैं तुरंत उठ खड़ी हुई और लगभग दौड़ते हुए दफ्तर से निकल पड़ी। लपकते हुए मैं सिटी बस पर चढ़ गई। चांदमारी से गणेशगुड़ी तक पहुंचने के दरम्यान अनेकों कल्पना में खोई रही। आंखों के सामने महाविद्यालय की वह हसीन जोड़ी सुरुचि और प्रशांत की खिलखिलाहटें कानों में गूंजने लगी। सुरुचि तब बीएससी प्रथम वर्ष की छात्रा थी और प्रशांत बीए अंतिम वर्ष का छात्र। दोनों की दोस्ती अजीबोगरीब परिस्थिति में हुई थी। सुरुचि लाइब्रेरी से सीढ़ियाँ पार करती हुई नीचे आ रही थी कि अचानक उसका पांव फिसल गया। नीचे से आते प्रशांत ने उसे न थामा होता तो न जाने क्या हो जाता। इस हादसे के दौरान दोनों एक दूसरे के करीब आ जाते हैं। “गणेशगुड़ी-गणेशगुड़ी नामा आसे” (कोई उतरेगा) कंडक्टर की आवाज से मेरी तंद्रा भंग हो गयी। मैं उतर कर जल्दी-जल्दी पग भरती हुई सुरुचि-प्रशांत के घर की तरफ आगे बढ़ने लगी। दरवाजा खुला था। मैं घर के अंदर प्रविष्ट हुई। कुछ अजीब सा लगा मुझे। सुरुचि और प्रशांत के चेहरे से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि दोनों में लड़ाई हुई हो। मुझे देख सुरुचि सामान्य होने का नाटक करने लगी।

“तुम दोनों अभी तक तैयार नहीं हुए?”

“मैं तो तैयार हूं पर सरु का अभी तक हुआ नहीं है,” प्रशांत ने कहा।

“तो तुम्हें कुछ मदद कर देनी चाहिए आखिर वह तुम्हारी अर्धांगिनी है।” मैने मजाक करते हुए कहा।

“कोई जरूरत नहीं।”

सुरुचि ने गुस्से भरे लहजे में कहा।

“देख रही हो श्वेता उसे मदद की क्या जरूरत?” प्रशांत ने बुरा सा मुंह बनाते हुए कहा।

“तुम लोग जाओ” अचानक सुरुचि मेकअप बॉक्स को ड्रायर में रखते हुए बोली।

यह क्या कह रही हो सरु ? तुम्हारे बिना हम क्यों जाएंगे। हमारी सुरुचि तो ऐसी न थी।”

“बन रही है।” प्रशांत ने व्यंग्य बाण छोड़ा।

“नहीं प्रशांत तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए।” दोनों की फोटो देखकर मैं फिर खो गई अतीत की ओर....।

सुरुचि और प्रशांत धीरे- धीरे एक दूसरे को चाहने लगे थे। पढ़ाई के साथ-साथ दोनों का प्यार भी प्रगाढ़ होता गया। साइंस की छात्रा होने के बावजूद सुरुचि कला में रुचि रखती थी। उसके द्वारा बनायी गयी पेंटिंग कितनी जीवंत लगती थी, साथ ही वह कथक नृत्य में भी निपुण थी।

और प्रशांत !

महाविद्यालय में उससे अच्छी कविता भला कौन लिख सकता था। साहित्य का छात्र होने के कारण वह साहित्य में काफी रुचि रखता था। कई कविताएं गुवाहाटी से निकलने वाले दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुकी थीं।

“क्या सोचने लगी श्वेता?” प्रशांत की आवाज़ ने मुझे चौंका दिया।

“कुछ नहीं।”

“सुरुचि तैयार हो चुकी है तो चलें?” मैंने कहा।

“बिल्कुल। “प्रशांत ने कहा।

सुरुचि का मूड अब भी ऑफ था। हम तीनों ऑटो रिक्शा द्वारा श्याम मंदिर की ओर चल पड़े। क्योंकि मैंने ही स्थान चुना था। भीड़भाड़ से दूर श्याम मंदिर पहाड़ के टिले पर अवस्थित है जब हम वहां पहुंचे शांत व शीतल परिवेश ने हमारा स्वागत किया। मंद-मंद हवाएं वातावरण में डोल रही थी।

भगवान के सामने माथा टेक कर हम पार्क में आकर बैठ गए। प्रशांत दूसरी छोर पर बैठे प्रकृति के मनोरम दृश्य का आनंद लेने लगा तो मैंने सुरुचि से पूछा।

“क्या बात है सरु? तुम सचमुच बहुत गुस्से में हो।”

“मैं और प्रशांत के साथ नहीं रह सकती। जैसे ज्वालामुखी फट पड़ी।

“क्यों ऐसी क्या बात हो गयी है सरु?” मैंने धीरे से पूछा।

“वह कभी भी मुझे कुछ भी नहीं बताता। कॉलेज से आकर अक्सर घंटों बाहर रहता है। हो सकता है काम से गया हो फिर भी बता कर जाना चाहिए। मैं तो नहीं रोकूंगी न उसे...। तुम्हारे आने से पहले इसी बात को लेकर हमारी झड़प हो रही थी।

“बस इतनी सी बात के लिए चिढ़ी हो। “मैंने समझाने वाले लहजे में उससे कहा- “सरु जिंदगी से तू इतनी जल्दी घबरा गयी। कुछ तो दोनों को अंडरस्टैंड करना होगा।”

“मैं ही सिर्फ क्यों करूं? वह तो कभी नहीं करता। गुस्से में ही वह बोली। मुझे समझते देर न लगी कि दोनों में मिस अंडरस्टैंडिंग हुई है। अतः मैंने उससे कहा- “क्योंकि तुम उसकी धर्मपत्नी हो। घर-संसार की बागडोर तुम्हारे हाथ में है। वैसे भी तुम तो एक अच्छी कलाकार हो। तुम्हें इतना संकीर्ण नहीं होना चाहिए। अपने बचे समय में पेंटिंग में और जान डालो, तुम्हें अच्छा लगेगा।”

“संकीर्ण मैं नहीं हालात ने मुझे बनाया है। क्या कभी प्रशांत को इसकी परवाह है? उल्टा समझाते हुए वह मुझसे कहने लगी। कला तो आखिर कला है चाहे पेंटिंग हो या लेखन।”

“एक्जेक्टली”

“प्रशांत कभी मुझे समझने की कोशिश नहीं करता। जुड़े तो हम दोनों कला से ही हैं मगर कभी कोई आग्रह नहीं दिखाता वह। पता नहीं किस मिट्टी से बना है।”

“तुम मुझे गलत मत समझना मैं यही बात तुमसे पूछना चाहती हूँ कि-” क्या तुमने कभी प्रशांत की रुचि में दिलचस्पी ली है?”

“क्या मतलब?”

“हो सकता है कि वह भी तुमसे यही उम्मीद रखता हो। कॉलेज के दिनों में वह बहुत कविताएं लिखता था न! तुम उसकी प्रेरणा बन सकती हो। उसकी कलम में जादू भर सकती हो।” देखना फिर कैसे वह तुम्हारे नजदीक आएगा। वही पहले जैसा प्रशांत। कभी-कभी छोटी-छोटी बातों को भी छोड़ना होगा।”

सुरुचि चुप थी। शायद उसे बात समझ में आ गई थी। आसमान पर काले बादल के झुंड तैरने लगे थे। मैंने इशारा किया प्रशांत को। वह हमारी तरफ ही निहार रहा था।

“चलें?” करीब आते प्रशांत से मैंने पूछा।

“समय कह रहा है चलना चाहिए। “उसने सुरुचि की तरफ देखते हुए कहा।

सरु अब भी चुप थी। हम तीनों ऑटो से लौट रहे थे। तीनों चुप थे। सिर्फ ऑटो की आवाज सुनाई पड़ रही थी। और मैं पहले की स्मृति में फिर से खो गयी।

प्रशांत ने एम .ए, एम. फिल. करने के बाद स्थानीय कॉलेज में लेक्चरर के रूप में नौकरी ज्वाइन कर ली थी। उसका सपना साकार हुआ वह बहुत खुश था। उसने फैसला किया कि वह अब सुरुचि से शादी करेगा। सुरुचि भी बहुत खुश थी क्योंकि उसे मनपसंद साथी जो मिला था। शानदार ढंग से दोनों की शादी हो गयी। पर मैं एक जरूरी काम से बाहर गयी थी, इसलिए शादी में शरीक ही नहीं हो पायी थी। अरसे बाद एक

दिन दफ्तर में सुरुचि का फोन आया। बता रही थी कि उसकी भी गुवाहाटी के किसी स्कूल में नौकरी लगी है। प्रशांत भी यहीं के स्थानीय कॉलेज में ट्रांसफर होकर आ गया है।

मैंने कहा – “अच्छा ही हुआ काफी दिनों से तीनों मिले नहीं थे। तो आज का प्रोग्राम बना था।

“उतरना नहीं है क्या?” सुरुचि का स्वर मुझे वर्तमान में खींच लाया। गणेशगुड़ी आ गया था। हम उतरकर तीनों घर पहुंचे। सुरुचि किचन की ओर चली गयी। मौका पाते ही मैंने प्रशांत से बात शुरू की। “यह सरु कैसे इतनी बदल गयी।”

“बनती है। हमेशा कुछ ना कुछ तर्क लेकर बैठ जाती है।”

“अच्छा एक बात बताओ प्रशांत क्या तुमने कभी उसकी रुचि में ध्यान दिया है?”

“इसकी जरूरत मैंने नहीं समझी।”

“इसी बात का तो रोना है।”

“क्या मतलब?”

देखो वह तुम्हारी अर्धांगिनी है। तुम एक दूसरे के पूरक हो। क्या तुम्हें उसकी रुचि का ख्याल रखना नहीं चाहिए?” वह कुछ नहीं बोला।

“तुम्हें अच्छी तरह पता है कि वह पेंटिंग में कितनी दिलचस्पी रखती है। क्या कभी तुमने उसका हौसला बढ़ाया है? कभी-कभी दूसरों का ख्याल रखना चाहिए।” मैं कहती रही और प्रशांत चुपचाप बैठे शून्य में निहारता रहा। सुरुचि चाय और गरमा-गरम समोसे लेकर ड्राइंग रूम में आ गयी।

“वाह समोसे।” मैंने झट से एक समोसा उठा लिया। मुझे महाविद्यालय का वह दिन याद आ गया। हम कुछ लड़कियां सुरुचि और प्रशांत की मुलाकात का एक समोसा लिया करते थे। वह दिन सच में कितना सुहाना था। आसमान पर काले बादल छा गए थे। दोनों से विदा लेकर मैं लौट पड़ी।

एक महीने बाद एक दिन अचानक मेरे दफ्तर में सुरुचि का फोन आया। उसने कल लंच पर आने का न्योता दिया। मेरे लाख पूछने पर उसने नहीं बताया कि यह अचानक प्रोग्राम कैसा? वह सिर्फ खिलखिला कर हंस कर कहने लगी- “कल आना तुम्हें खुद-ब-खुद पता चल जाएगा।” मैं सोच में पड़ गयी।

“क्या बात हो सकती है?” महीने भर पहले वह कितनी बदली-बदली सी लगी थी। मगर आज फिर पहले जैसी सुरुचि कैसे हो गई। जो भी हो कल इतवार है। छुट्टी का दिन, कल पता चल जाएगा। मन को आश्वस्त किया मैंने।

दूसरे दिन जैसे ही मैंने उनके घर में प्रवेश किया। दोनों ने बड़े गर्मजोशी से मेरा स्वागत किया। बड़े खुश नजर आ रहे थे दोनों।

“क्या बात है?” सोफे पर बैठते हुए मैंने पूछा।

“हम दोनों तुम्हारे प्रति बहुत शुक्रगुजार हैं। सुरुचि ने कहा।

“किस बात के लिए?” विस्मय सूचक निगाहों से मैंने पूछा।

सुरुचि कहने लगी- “उस दिन यदि तुमने न समझाया होता तो हम कभी एक दूसरे के करीब न होते। जानती हो प्रशांत ने मेरी पेंटिंग की प्रदर्शनी के लिए काफी दौड़-धूप की तथा मेरा हौसला बढ़ाया। एक-एक पेंटिंग पूरी करने में काफी मदद की।”

“और तुमने मेरी मरी हुई भावनाओं को कलम के द्वारा जीवंत कराया।” प्रशांत ने बीच में ही बात करते हुए कहा।

मैं दोनों की बात चुपचाप सुनती रही। दोनों में गजब का तालमेल हो गया था। डायनिंग टेबल पर तीनों बैठकर खाना खा रहे थे। पर मैं एक ही बात सोच रही थी कि मेरे समझाने का असर इतनी जल्दी होगा मैंने सोचा ही न था।

(लेखकीय परिचय: रीता सिंह चर्चित कहानीकार हैं। वर्तमान में पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी, असम की अध्यक्ष हैं।)
